बालकृष्ण भट्ट : कबीर की परंपरा के लेखक

गंगा सहाय मीणा

आलोचना और साहित्येतिहास में किसी रचनाकार की उपस्थिति का स्वरूप बाद के समय में उसके मूल्यांकन को प्रभावित करता है। आलोचकों और साहित्येतिहासकारों का सकारात्मक रवैया कई बार साधारण लेखकों को भी स्थापित कर देता है, वहीं कई बार इसके विपरीत स्थिति भी होती है यानी कई रचनाकार बेहतरीन रचनाओं के बावजूद सायास उपेक्षा के शिकार होते हैं। हिंदी आलोचना और साहित्येतिहास को देखकर ऐसा लगता है कि अन्य कई लेखकों के साथ नवजागरण के सशक्त हस्ताक्षर बालकृष्ण भट्ट भी इस सायास उपेक्षा का शिकार हुए हैं। यह दिलचस्प है कि बालकृष्ण भट्ट के लेखन के बारे में हिंदी आलोचना और साहित्येतिहास में लगभग सभी टिप्पणियाँ प्रशंसात्मक हैं लेकिन किसी आलोचक ने एक सदी बीत जाने तक भट्ट जी की रचनाओं का समग्र संग्रह निकालने या उन पर स्वतंत्र पुस्तक लिखने की जरूरत नहीं समझी। रामचंद्र शुक्ल ने अपने साहित्येतिहास में बालकृष्ण भट्ट के निबंधों की तारीफ की है और उन्हें 'हिंदी गद्य परंपरा का प्रवर्तन' करने वाले लेखकों में माना है। अपने साहित्येतिहास में रामचंद्र शुक्ल लिखते हैं, "पं. प्रतापनारायण मिश्र और बालकृष्ण भट्ट ने हिंदी गद्य साहित्य में वही काम किया जो अंग्रेजी गद्य साहित्य में एडीसन और स्टील ने किया था।"[i] इस साहित्येतिहास ग्रंथ के बाहर शुक्ल जी बालकृष्ण भट्ट पर एक लेख भी नहीं लिखते।

रामविलास शर्मा ने नवजागरण के दो लेखकों को स्थापित करने का कार्य किया - भारतेंदु हरिश्चंद्र और महावीर प्रसाद द्विवेदी। उन्होंने अपनी पुस्तक 'भारतेंदु युग और हिंदी भाषा की विकास पंरपरा' में बालकृष्ण भट्ट की कई प्रसंगों में प्रशंसा की है जिनमें प्रमुख हैं - इतने समय तक 'हिंदी प्रदीप' निकालना, आधुनिक हिंदी आलोचना के जन्मदाता, प्रगतिशील आलोचना की नींव डालना आदि। अपना निष्कर्ष देते हुए रामविलास शर्मा लिखते हैं कि बालकृष्ण भट्ट ने "हिंदी प्रदीप' चलाकर देश और समाज के लिए अपूर्व साधना का उदाहरण हमारे सामने रखा... वह अपने युग के सबसे महान विचारक थे।"[ii] इसके बावजूद रामविलास शर्मा भट्ट जी के लेखन पर कोई किताब नहीं लिखते, न ही उन्हें भट्ट जी के लेखन का कोई संकलन निकालने तक की आवश्कता दिखती है। स्वयं जिस किताब में उन्होंने भट्ट जी पर ये टिप्पणियाँ की हैं, उसमें भी भट्ट जी पर साढ़े पाँच पेज का एक अध्याय मात्र है, कोई विस्तृत विश्लेषण नहीं। विस्तृत विश्लेषण भारतेंदु और उनकी मंडली का है। यह सच है कि बालकृष्ण भट्ट की आरंभिक पहचान भारतेंदु मंडल के एक सदस्य के रूप में ही थी लेकिन बाद में उन्होंने इसका अतिक्रमण कर अपने जीवन, विचार और लेखन से स्वतंत्र पहचान बनाई जो स्वतंत्र मूल्यांकन की माँग करती है।

रामविलास शर्मा के बाद नवजागरण पर महत्वपूर्ण कार्य वीर भारत तलवार का है। उन्होंने अपनी किताब 'रस्साकशी' में विभिन्न प्रसंगों में बालकृष्ण भट्ट को उद्धरित किया है, तारीफ भी की है लेकिन विस्तृत विश्लेषण और मूल्यांकन वहाँ भी नहीं है। यह

दिलचस्प है कि यह किताब हिंदी आलोचना में अन्य कई बातों के साथ भारतेंदु के नायकत्व पर गंभीर सवाल उठाने के लिए भी जानी जाती है।

यूँ तो बालकृष्ण भट्ट के निबंधों के संकलन देवीदत्त शुक्ल व धनंजय भट्ट ने संयुक्त रूप से[iii] और धनंजय भट्ट ने स्वतंत्र रूप से[iv] निकाले हैं, लेकिन हिंदी के आम पाठकों का भट्ट जी से पहला संवाद सत्यप्रकाश मिश्र के माध्यम से हुआ। मिश्र जी ने बालकृष्ण भट्ट के निबंधों के दो संकलन प्रकाशित किए हैं, पहला[v] 1996 में और दूसरा[vi] उससे अगले ही वर्ष 1997 में। सत्यप्रकाश मिश्र जी के संकलनों की सबसे अहम विशेषता है - दोनों संकलनों के लिए अलग निबंधों का चयन और दोनों में मिश्र जी की महत्वपूर्ण भूमिकाएँ। कहा जा सकता है कि इन दोनों संकलनों में भट्ट जी के ज्यादातर निबंध शामिल हो गए। भट्ट जी के नाटकों को भी संकलित कर धनंजय भट्ट ने प्रकाशित[vii] कराया है।

इसके बाद भी भट्ट की रचनावली और मोनोग्राफ का काम अधूरा रहा, जिसे पूरा किया समीर कुमार पाठक ने। इन्होंने संभवतः पीएच.डी. शोध हेतु भट्ट जी पर काम शुरू किया जो बाद में एक आलोचनात्मक पुस्तक[viii] और रचनावली[ix] तक जाता है। समीर कुमार पाठक ने बालकृष्ण भट्ट के लेखन के तमाम पक्षों को उकेरने का सफल प्रयत्न किया है।

उपर्युक्त के अलावा बालकृष्ण भट्ट के व्यक्तित्व और कृतित्व पर छिटपुट लेखन मिलता है। भट्ट जी की जीवनी[x] लक्ष्मीकांत भट्ट ने लिखी है और पहली आलोचनात्मक पुस्तक[xi] ब्रजमोहन व्यास ने। भट्ट जी के लेखन पर गोपाल पुरोहित और अभिषेक रौशन के शोध कार्य[xii] [xiii] पुस्तक रूप में मिलते हैं। अभिषेक रौशन ने हिंदी आलोचना के आरंभ के संदर्भ में बालकृष्ण भट्ट के योगदान की गहरी छानबीन की है।

हिंदी साहित्य और आलोचना में बालकृष्ण भट्ट का कद कुछ इस तरह का निर्मित किया गया है कि लगता है वे भारतेंदु के बाद हुए या भारतेंदु मंडल के लेखकों में सबसे छोटे थे। जबकि सच यह है कि बालकृष्ण भट्ट भारतेंदु हरिश्चंद्र से उम्र में छह वर्ष बड़े थे। बालकृष्ण भट्ट का जन्म 23 जून 1844 को इलाहाबाद में हुआ। भट्ट जी की जीवनी लक्ष्मीकांत भट्ट ने लिखी है। इस जीवनी के माध्यम से हम बालकृष्ण भट्ट के जन्म से लेकर नवजागरण के पुरोधा बनने की प्रक्रिया को समझ सकते हैं। जल्द विवाह (1856) और माँ की असमय मृत्यु (1861) से भट्ट जी का जीवन चुनौतियों से घिर गया। जीवन की इस तरह की कठिनाइयाँ पीड़ा अवश्य देती हैं लेकिन साथ ही ऐसी परिस्थितियाँ व्यक्ति को नई समझ भी देती हैं, समाज और दुनिया को देखने का नया नजरिया देती हैं और मेच्योर बनाती हैं।

तमाम परिस्थितियों के बावजूद भट्ट जी ने संस्कृत और अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त की। उन्हें अंग्रेजी अध्ययन के लिए प्रेरित करने वालों में एक थे 'देवनारायण शुक्ल, जो कचहरी में मुलाजिम थे। उन्होंने भट्ट जी को केवल प्रेरणा ही नहीं दी बल्कि कुछ दिनों अंग्रेजी पढ़ाई भी'। पिता उन्हें व्यापार के काम में लगाना चाहते थे लेकिन उन्होंने माँ की प्रेरणा से

विपरीत स्थितियों में भी अपनी पढ़ाई जारी रखी। संस्कृत और अंग्रेजी के अलावा उन्होंने फारसी, हिंदी और बांग्ला का भी अध्ययन किया। अपनी अध्ययनशीलता के बल पर उन्हें मिशल स्कूल में नौकरी मिल गई। लेकिन यह ज्यादा दिन नहीं चली। पुश्तैनी व्यापार के काम में रुचि न लेने के कारण वहाँ से भी बेदखल हो गए। ऊपर से कंधों पर परिवार के जीविकोपार्जन का जिम्मा भी था। वे इन परिस्थितियों के लिए सबसे ज्यादा अपने बाल-विवाह को जिम्मेदार मानते थे। शायद इसीलिए बाद के दिनों में उन्होंने बाल-विवाह की आलोचना में स्पष्टता और तीक्ष्णता से लिखा है। खैर, अंततः उन्हें कायस्थ पाठशाला में संस्कृत पढाने की नौकरी मिल गई जिसमें उन्होंने लगभग दो दशक तक काम किया।

19वीं सदी का उर्दू-हिंदी विवाद उसके बाद के भाषा-साहित्य को समझने की दृष्टि से तो महत्वपूर्ण है ही, हमारे राष्ट्रवाद के स्वरूप व उनकी निर्मिति को समझने में भी सहायक है। जब अंग्रेज सरकार ने 1837 में स्थानीय भाषाओं को सरकारी भाषा बनाने संबंधी आदेश निकाला तो सवाल उठा कि पश्चिमोत्तर प्रांत की स्थानीय भाषा कौन सी है? फोर्ट विलियम कॉलेज के माध्यम से जॉन गिलक्राइस्ट उत्तर भारत की सहज प्रचलित सामान्य भाषा को हिंदी और हिंदुस्तानी (उर्दू) में बाँट चुके थे। राजभाषा संबंधी यह आदेश आने से हिंदू और मुस्लिम, दोनों समुदायों के आर्थिक हित सामने आ गए। दोनों को एक-दूसरे से खतरा महसूस होने लगा। भाषा का विभाजन होने लगा। देवनागरी लिपि में लिखी जाने वाली भाषा को संस्कृतनिष्ठ बनाया जाने लगा और फारसी लिपि में लिखी जा रही भाषा को अरबी-फारसीनिष्ठ। उर्दू और हिंदी के अपने दावे थे। इन दावों के समर्थन में हजारों-लाखों लोग खड़े हो गए। मूल सवाल लिपि का था जो धीरे-धीरे भाषा के रास्ते धर्म से जुड़ता चला गया। हिंदी भाषा और नागरी लिपि के सवाल के साथ गोरक्षा का सवाल भी जुड़ गया।

उन्हीं दिनों में दोनों भाषाओं के समर्थन में ढेरों सस्थाओं का निर्माण हुआ। स्वयं नागरी प्रचारिणी सभा और हिंदी साहित्य सम्मेलन प्रयाग भी उसी दौर में पैदा हुई संस्थाएँ हैं जिनके माध्यम से हिंदी साहित्य का इतिहास लिखा गया, प्राचीन ग्रंथों को खोजकर प्रकाशित किया गया, हिंदी का शब्दकोश निर्मित किया गया और हिंदी के प्रचार के लिए पत्रिका प्रकाशित की गई। यह सब कुछ हिंदी के प्रचार-प्रसार के लिए, हिंदी को उर्दू की तुलना में पुराना और समृद्ध साबित करने के लिए, या प्रकारांतर से हिंदी के दावे को मजबूत करने के लिए था। उसी दौर में इलाहाबाद के उत्साही युवकों ने एक संस्था बनाई - हिंदी वर्द्धिनी सभा। बालकृष्ण भट्ट इसके संस्थापक सदस्यों में थे। स्वयं भारतेंदु का समर्थन प्राप्त था इस संस्था को। इसी संस्था के द्वारा 'हिंदी प्रदीप' जैसा ऐतिहासिक पत्र निकाला गया, जिसके संपादक बने बालकृष्ण भट्ट। हिंदी प्रदीप 1877 से प्रकाशित होना शुरू हुआ। पत्र का मोटो भारतेंदु द्वारा ही रचा गया -

'शुभ सरस देश सनेह पूरित प्रकट ह्वै आनंद भरै
बचि दुसह दुर्जन वायु सो मणि द्वीप समथिर नहिं टरै
सूझे विवेक विचार उन्नति कुमति सब यामै जरै
'हिंदी प्रदीप' प्रकाश मूरखतादि भारत तम हरै।'

'हिंदी प्रदीप' का निकलना पूरे हिंदी आंदोलन, और स्वयं बालकृष्ण भट्ट के जीवन की सबसे बड़ी घटना थी। जब किसी भाषा में पाठकों का टोटा हो, पत्र को विज्ञापन या अन्य कोई आर्थिक सहायता न हो और सबसे बड़ी बात - गुलामी का दौर हो व पत्र स्वतंत्रचेता हो, ऐसे में एक पत्र के लगभग 33 वर्ष तक निकलने से बड़ी घटना क्या होगी पत्रकारिता के इतिहास में! इसमें आई मुश्किलों को स्वयं भट्ट जी ने इन शब्दों में व्यक्त किया है - 'मूँड़-मुँड़ाते ही ओले पड़े। हमें प्रकट हुए देर न हुई कि प्रेस एक्ट का जन्म हुआ। प्रेस एक्ट नाम सुनते ही छात्र मंडली छिन्न भिन्न हो गई। निज की उन्नति के आगे हिंदी की उन्नति का उत्साह भंग हो गया... हम अंगीकृत का परिपालन अपने जीवन का उद्देश्य मान प्रतिदिन इसे अधिक आर्थिक कष्ट जो उसके पीछे उठाते रहे सो एक ओर रहे, कर्मचारियों की निगाह में चढ़ जाना आर्थिक कष्ट से कुछ कम नहीं।' रामविलास शर्मा ने ठीक ही लिखा है कि इतने दिनों तक 'हिंदी प्रदीप चलाना एक ऐतिहासिक घटना है'।[xiv] इन 33 वर्षों में 'हिंदी प्रदीप' में क्या कुछ छपा, यह स्वतंत्र शोध का विषय है। तत्कालीन शेष पत्र-पत्रिकाओं से 'हिंदी प्रदीप' के संवाद पर भी काम किया जाना चाहिए।

जब तक बालकृष्ण भट्ट की नौकरी रही, 'हिंदी प्रदीप' अच्छे से निकलता रहा। इसे निकालने में भट्ट जी का उनके मित्रों ने भी सहयोग किया। चूँकि भट्ट जी राष्ट्रीय राजनीति में घट रही घटनाओं से गहरे में जुड़े हुए थे इसलिए जब बाल गंगाधर तिलक को 6 साल की सजा हुई, पूरे देश के साथ-साथ इलाहाबाद के बलुआघाट पर भी तिलक की सजा के विरोध में सभा हुई और उसके सभापति थे बालकृष्ण भट्ट। अपने सत्ता-विरोधी विचारों के कारण अंततः उन्हें अपनी नौकरी से इस्तीफा देना पड़ा। उन्हीं दिनों नए औपनिवेशिक कानून के तहत 'हिंदी प्रदीप' पर अत्यधिक जुर्माना लगाए जाने की वजह से 1910 में हिंदी प्रदीप को बंद कर देना पड़ा। 'हिंदी प्रदीप' की यह 33 वर्षों की यात्रा तमाम मुश्किलों के बावजूद भट्ट जी की जीवनी-शक्ति थी। 'प्रदीप' के बुझने से भट्ट जी के जीवन की लौ भी मद्धिम हो गई और 20 जुलाई 1914 को हिंदी का यह चिराग हमेशा के लिए बुझ गया। अपने आखिरी वर्षों में बालकृष्ण भट्ट नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा जारी कोश-निर्माण की प्रक्रिया से भी जुड़े। वे जीवन पर्यंत हिंदी के सेवा के लिए तत्पर रहे। उन्होंने अपनी लेखनी से हमेशा हिंदी समाज को जगाने का ही काम किया।

बालकृष्ण भट्ट का साहित्यिक संसार पर्याप्त विस्तृत है। उन्होंने नई चेतना से लैस सैंकड़ों निबंधों की रचना कर हिंदी समाज को जगाया ही, दो पूर्ण उपन्यासों और कई अपूर्ण उपन्यासों, दो कहानियों और दर्जनों मौलिक व अनूदित नाटकों की भी रचना की। उनके लेखन का संपूर्णता में अध्ययन और मूल्यांकन करने वाले काम होना अभी बाकी है। भट्टजी के दोनों पूर्ण उपन्यास, 'नूतन ब्रह्मचारी' और 'सौ अजान एक सुजान' अपने समय की चेतना के साथ खड़े दिखते हैं। दोनों का उद्देश्य समाज सुधार है इसलिए इनमें आदर्शवाद और उपदेशात्मकता हावी है। भट्ट जी के नाटकों में अधिकांश संस्कृत ग्रंथों पर आधारित या ऐतिहासिक हैं। 'जैसा काम वैसा परिणाम' प्रहसन नए समय और संदर्भों के साथ रोचक बन पड़ा है।

बालकृष्ण भट्ट पूरे नवजागरण के सबसे ओजस्वी लेखक हैं, इस बात को उनके निबंधों के माध्यम से आसानी से प्रमाणित किया जा सकता है। सामाजिक-राजनीतिक विषयों पर जितना 'हिंदी प्रदीप' में छपा, उतना अन्य किसी पत्र-पत्रिका में नहीं छपा। उन्होंने साहित्य की बुनियादी अवधारणा को ही बदल दिया। भट्ट जी से पहले साहित्य रसात्मक वाक्य या स्वांतः सुखाय था, जिसे उन्होंने नए ढंग से व्याख्यायित किया और कहा - साहित्य जनसमूह के हृदय का विकास है। यह अकेला वाक्य उनके लेखन को समझने की कुंजी है। इसी शीर्षक से लिखे अपने निबंध में बालकृष्ण भट्ट कहते हैं, "साहित्य यदि जन समूह (Nation) के चित्त का चित्रपट कहा जाय तो संगत है। किसी देश का इतिहास पढ़ने से केवल बाहरी हाल उस देश का जान सकते हैं पर साहित्य के अनुशीलन से कौम के सब समय-समय के आभ्यंतरिक भाव हमें परिस्फुट हो सकते हैं।"[xv] जाहिर है साहित्य की अवधारणा बदलने का संबंध उसके उद्देश्य से भी जुड़ता है। 19वीं का उत्तरार्ध वह समय है जब हिंदी क्षेत्र एक नई करवट ले रहा था। यहाँ यूरोप जैसा नवजागरण हुआ हो, न हुआ हो लेकिन पहले पहल पश्चिमी ढंग की आधुनिकता लोगों के जीवन में दस्तक दे रही थी। बालकृष्ण भट्ट उसी आधुनिकता के लेखक हैं। वे हर बात को तर्क की कसौटी पर कसते हैं। उनके विश्लेषण में कहीं-कहीं उनके संस्कार हावी होते हैं लेकिन अंततः वे ज्यादा देर तक तर्क का साथ नहीं छोड़ पाते। उनके बारे में सत्यप्रकाश मिश्र के इस कथन से सहमत हुआ जा सकता है कि "बालकृष्ण भट्ट अपने जीवनकाल तक अपने समय के सबसे अधिक सजग, सक्रिय सोद्देश्य प्रधान, भविष्यद्रष्टा लेखक थे... हिंदी नवजागरण के वे ऐसे जाग्रत प्रतीक हैं जिनमें कर्म और वाणी, दोनों स्तरों पर कहीं भी राजभक्ति की गंध नहीं मिलती। वे तिलक के समर्थक थे लेकिन विचारों की नवीनता की दृष्टि से उनसे आगे थे।"[xvi] बालकृष्ण भट्ट का ऐसा मूल्यांकन पहले किसी ने नहीं किया। उन पर लिखने वालों ने भारतेंदु मंडल की चारदीवारी के अंदर ही उनका मूल्यांकन किया। सत्यप्रकाश मिश्र का यह निष्कर्ष भी विचारणीय है कि 'भारतेंदु और महावीर प्रसाद द्विवेदी की महानताओं के बीच बालकृष्ण भट्ट की प्रखर राजनैतिक सामाजिक सजगता और क्रांतिदर्शी समग्रचेतना जैसे दबा दी गयी'। मिश्र जी के इस मूल्यांकन के आधार क्या हैं, आइए स्वयं बालकृष्ण भट्ट के लेखन की विशेषताओं के माध्यम से यह समझने की कोशिश करते हैं।

नवजागरण का पूरा दौर सांस्कृतिक संघर्ष का दौर था। रामस्वरूप चतुर्वेदी ने ठीक ही इसे दो संस्कृतियों के टकराने से निकली वैचारिक ऊर्जा कहा है। रामचंद्र शुक्ल ने अपने साहित्येतिहास में इस संदर्भ में बालकृष्ण भट्ट पर टिप्पणी करते हुए ठीक ही लिखा है, "नूतन पुरातन का वह संघर्ष काल था जिसमें भट्ट जी को चिढाने की विशेष सामग्री मिल जाया करती थी। समय के प्रतिकूल पुराने बद्धमूल विचारों को उखाड़ने और परिस्थिति के अनुकूल नए विचारों को जमाने में उनकी लेखनी सदा तत्पर रहती थी।"[xvii]

जब बालकृष्ण भट्ट ने लिखना शुरू किया, उस दौर में भारतीय समाज एक तरफ अंग्रेजों की गुलामी से त्रस्त था, दूसरी तरफ भारतीय समाज की अंदरूनी समस्याएँ थीं। अंग्रेजी शिक्षा के माध्यम से आ रही आधुनिकता ने तर्क की महत्ता बढ़ाई और हर चीज को कार्य-कारण के दायरे में देखने का रास्ता दिखाया। धर्मांतरण का भय भी हिंदू

बुद्धिजीवियों को अपनी संस्कृति और परंपराओं के पुनर्मूल्यांकन को मजबूर कर रहा था। 19वीं सदी का सुधार आंदोलन इसी पर टिका है। बालकृष्ण भट्ट का लेखन भारतेंदु मंडल के अन्य लेखकों के साथ शुरू हुआ लेकिन थोड़े ही दिनों में इनकी लेखनी ने स्पष्ट कर दिया कि इनके विचार उस परिवेश और समय का अतिक्रमण कर आने वाली पीढ़ियों तक से संवाद करने वाले हैं। शायद इसीलिए स्वयं भारतेंदु इन्हें अपने बाद सबसे बड़ा लेखक मानने लगे थे।

बालकृष्ण भट्ट ने अपने इस उद्देश्य को अपने पत्र 'हिंदी प्रदीप' के प्रवेशांक से ही स्पष्ट कर दिया। वे 'समाचार पत्र की आवश्यकता' शीर्षक से अपना उद्देश्य स्पष्ट करते हुए कहते हैं, "पश्चिमोत्तर देश की राजधानी में एक ऐसे हिंदी समाचार-पत्र का होना आवश्यक है जिसमें राजकाज संबंधी बातों पर राय दी जाय। सब प्रकार की खबर हो और विज्ञान, खगोल, भूगोल आदि विद्या-संबंधी विषयों पर लेख लिखे जायं... मेरा मुख्य उद्देश्य देश की भलाई है। इसलिए मैं प्रगट हुआ हूँ। मैं चाहता हूँ कि समय-समय पर आपके सम्मुख प्रगट होकर देशवासियों की वर्तमान शोचनीय हीन-दीन दशा से आपको अवगत कराकर उसे सर्वसाधारण के हित के लिए प्रेरित करूँ।" (समाचारपत्र की आवश्यकता) यह एक लेखक, एक संपादक का विजन है - अपने देश और समाज को आधुनिक बनाने के लिए। इससे पहले शायद ही हिंदुस्तान के किसी लेखक ने इतनी स्पष्टता से देश और समाज को बदलने का ऐसा संकल्प लिया हो! बालकृष्ण भट्ट का उपर्युक्त संकल्प इसलिए भी महत्वपूर्ण है कि यह संकल्प उस दौर का है जब भारत में राष्ट्र-राज्य बनने की प्रक्रिया ठीक से शुरू भी नहीं हुई थी। यहाँ तक कि अखिल भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का गठन भी नहीं हुआ था। भट्ट जी ने अपने लेखन के स्पष्ट लक्ष्य बना लिए - 'देश की बुराईयों का शोधन, भलाई का संचार और उन्नति'।

जब राष्ट्र और राष्ट्रवाद का कोई खाका भी न बना हो, उस दौर में उपनिवेशवाद से लड़ने और उसके खिलाफ लोगों को जागरूक करने का सबसे सशक्त तरीका होता है - देश की वर्तमान हालत का जायजा, देश की दुरावस्था के कारणों की पड़ताल और दुरावस्था की जिम्मेदारी तय करना। भट्ट जी के लेखन में यह कूट-कूटकर भरा है। उन्होंने देशोन्नति का मार्ग प्रशस्त करते हुए स्पष्ट घोषणा कर दी कि "देश की उन्नति और वास्तविक भलाई करने का द्वार हम राजनैतिक एकता को ही मानेंगे। जब तक कोई जाति एक राजनैतिक समूह न होगी जिसका एक ही राजनैतिक उद्देश्य है और जिस जाति के लोग एक ही राजनैतिक खयाल से प्रोत्साहित नहीं है तब तक उस जाति की संपत्ति और वृद्धि की बुनियाद किस चीज पर कायम रखेंगे? हम देखते हैं कि अंग्रेजों के इतिहास में बहुत जल्द राजनैतिक एक जातित्व आ गया जिसके कारण उनके जाति की उन्नति चरम सीमा को पहुँचने लगी और उसी के विपरीत हम देखते हैं कि राजनैतिक बंधन न होने से बहुत जल्द हमारी जाति तीन तेरह हो गई।" (जातियों का अनूठापन) जाहिर है यहाँ भट्ट जी जाति पद का प्रयोग नेशनलिटी के अर्थ में कर रहे हैं। राष्ट्रीय एकता की यह माँग वास्तव में राष्ट्र की भीतरी और बाहरी समस्याओं पर पूरे समाज को एकजुट करने की माँग है।

राष्ट्र निर्माण की सबसे बड़ी बाधा औपनिवेशिक शासन या पराधीनता को महसूस करना और दूसरों को महसूस कराना बालकृष्ण भट्ट के राजनीतिक चिंतन का प्रस्थान बिंदु है, "हम समझते हैं कि बचपन में जन्मघूँटी के साथ हमें पराधीनता का रस निचोड़कर पिला दिया जाता है और बचपने से ही इस बात की ताकीद रहती है कि खबरदार, आजादी के पास न खड़े होना।" (चली सो चली) औपनिवेशिक दौर के लेखकों ने इस तरह के राजनीतिक विषयों पर घुमा-फिराकर तो बहुत लिखा लेकिन देश की दुर्दशा के लिए ब्रिटिश सत्ता को सीधे जिम्मेदार ठहराते हुए इतनी स्पष्टता से किसी ने नहीं लिखा, "क्या राजनीति या गूढ़ पॉलिटिक्स के यही माने हैं कि दया का कहीं लेश भी न रहने पावे। हिंदुस्तान की करोड़ों दीन प्रजा भूखों मरैं और इंग्लैंड के पेट भरे लोग इन भुक्खड़ों की रोटी छीन गुलछर्रे उड़ावें। धिक स्वार्थपरता! इससे अधिक निठुराई और क्या होगी।" (दुर्भिक्ष दलित भारत) जनहित में ताकतवर सत्ता को चुनौती देना जनपक्षधरता और राष्ट्रभक्ति की सबसे बड़ी पहचान है। भट्ट जी कौमियत या राष्ट्रभक्ति को स्वराज की पहली सीढ़ी मानते थे, "कौमीयत का आना स्वराज की पहली सीढी है।" (स्वराज्य क्या है) लेकिन भट्टजी का लेखन राष्ट्रीयता के स्वरूप को लेकर भी सजग है। उनके अनुसार सच्ची राष्ट्रभक्ति झंडे, राष्ट्रगान या भौगोलिक सीमाओं में नहीं, देश की जनता के दुख-दर्दों से खुद को जोड़ने में होती है। जब देश में अकाल पड़ा तो बालकृष्ण भट्ट चुप नहीं रहे और उन्होंने उस अकाल को प्राकृतिक आपदा न कहकर उसके लिए तत्कालीन सरकार की नीतियों को जिम्मेदार ठहराया। वे खेती में होने वाले छह प्रकार के उपद्रवों का जिक्र करने के बाद लिखते हैं, "जिसके मुकाबले ये छः प्रकार के उपद्रव खेती को कुछ भी नुकसान नहीं पहूँचाते और वह गवर्नमेंट की अत्यंत क्षुधा तथा बिलायत का एक्सपोर्ट है।" (दुर्भिक्ष दलित भारत) भट्ट जी की राय स्पष्ट है कि "सर्कारी लगान कम कर दिया जाय और गवर्नमेंट अपना कट्टरपन छोड़कर किंचितमात्र दया को चित्त में स्थान दे तथा यम की डाढ़ सदृश गल्ले का एक्सपोर्ट एक कलम से बंद कर दिया तो हमारे देश में अन्न का टूटा कभी न रहे।" (दुर्भिक्ष दलित भारत) एक गरीब औपनिवेशिक देश की निर्यात नीति पर इससे बड़ी और स्पष्ट राजनीतिक टिप्पणी नहीं हो सकती। किसी भी देश में आयात-निर्यात फ्री ट्रेड का तर्क देकर शुरू किया जाता है। भूमंडलीकरण इसी फ्री ट्रेड या स्वतंत्र व्यापार की नीति का विकसित रूप है जिसे आज दुनियाभर के गरीब देश झेल रहे हैं। भट्ट जी ने आज से 100 साल से भी अधिक पहले इस स्वतंत्र व्यापार की असलियत समझ ली थी। वे पाठकों को इसके बारे में समझाते हुए लिखते हैं, "यह इसी फ्रीट्रेड की महिमा है कि हम दाने-दाने को तरस रहे हैं - जिस देश में कारीगरी की तरक्की है और जो देश Competition आपस की उतरा चढ़ी में पार पा सकता है उसके लिए स्वतंत्र वाणिज्य बड़ी बरकत है। लेकिन जो कृषि प्रधान देश है, जो सिर्फ कच्चा बाना Row Material पैदा करता है, उसके लिए यह फ्रीट्रेड जहर है।" (स्वतंत्र वाणिज्य) कहना मुश्किल है कि उपनिवेशवाद की प्रक्रिया पर इतनी तीखी टिप्पणी करने का यह मजबूत तर्क व आर्थिक सिद्धांत उस दौर में भट्ट जी को कहाँ से सूझा लेकिन ऐसा लगता है कि मानो बाद के राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन में यह तर्क केंद्रीय तर्क बनता चला गया और आज भी उतना ही प्रासंगिक है। हमें भट्टजी का मूल्यांकन करते समय यह भी ध्यान रखना होगा कि उनके जीवनकाल में महात्मा गांधी का राष्ट्रीय राजनीति में प्रवेश भी नहीं हुआ था। अपने तर्क का विस्तार करते हुए भट्टजी ने यहाँ तक कह दिया कि "स्वदेशी और बायकाट से कुछ नहीं होना है न देश से दरिद्रता दूर होने वाली है, जब तक यह फ्रीट्रेड

कायम रहेगा।" (स्वतंत्र वाणिज्य) यह 20वीं सदी के पहले दशक में राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन के जिम्मेदार सिपाही की दूरदृष्टिभरी आलोचनात्मक टिप्पणी थी। यानी अपनी लेखनी के माध्यम से बालकृष्ण भट्ट ने राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन में सक्रिय सहभागिता की। बालकृष्ण भट्ट को राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन का पहला लेखक कहना भी अतिशयोक्ति न होगी। उनका सबसे बड़ा योगदान उपनिवेशवाद के चरित्र को समझाना और उसके खिलाफ देश की जनता को जगाना है। इसी उद्देश्य के तहत वे अपने निबंध 'रिलीफ वर्क्स खोलने के उद्देश्य' में सरकार द्वारा विद्रोहों के दमन के उद्देश्य से खोले गए रिलीफ वर्क्स की भी पोल खोलते हैं।

बालकृष्ण भट्ट राष्ट्रीयता के निर्माण की मुश्किलों की पहचान कर उन पर लेखकीय हस्तक्षेप करते हैं। वे राष्ट्रीयता की राह में सबसे बड़ी मुश्किल हमारे आंतरिक भेदों को मानते हैं और जब वे इन आंतरिक भेदों के लिए धर्म को जिम्मेदार पाते हैं तो उसे भी नहीं बख्शते। वे सीधे शब्दों में लिखते हैं, "आगे कदम बढाने को कौन कहे, ऐसी-ऐसी सामाजिक और मजहबी कैदें पीछे लगा दी गई हैं जिनका परिणाम ईर्ष्या-द्रोह, लड़ाई-झगड़ा और आपस में फूट के सिवा और कुछ हो ही नहीं सकता; जिसमें कौमियत या जातीयता का भाव हमारे में कभी आ ही नहीं सकता।" (नए तरह का जनून) धर्म की बाधा कैसे काम करती है, इस पर बालकृष्ण भट्ट बिना किसी लाग लपेट के लिखते हैं, "बड़े-बड़े दान, तीर्थ-यात्रा, मंदिर, शिवाले, धर्मशाला का बनाना बस ऐसी ऐसी पाँच चार बातें हैं जिनमें हमारे देश का करोड़ों रुपया उठ जाता है और वे सब बातें ऐसी हैं कि इनसे उपकार और भलाई होना एक ओर रहा, हानि और नित्य-नित्य हमारी हीनता और अवनति अलबत्ता होती जाती है... एक तो हमारी हिंदू कौम अत्यंत 'कनसरवेटिव' लकीर पर फकीर, जितना बाप-दादों के समय से होता आता है, उससे बाल बराबर इधर-उधर न हटेंगे।" (हमारे धर्म संबंधी खर्च) इसी बात को जारी रखते हुए वे एक अन्य निबंध में लिखते हैं, "सनातन धर्म वाले उपदेश देते हैं - 'बाप दादा की लीक पीटते जाओ, यही संपूर्ण वेदशास्त्र का निचोड़ है। हिंदू धर्म का सारांश है'। हमारा उपदेश है - 'बाप दादा की लीक पीटने के बराबर कोई दूसरा पाप ही नहीं है, बाप दादाओं की कमअकली पर तुम्हें घिन न हुई, तो तुम्हारे पढ़ने-लिखने पर लानत है... यह सनातन धर्म नहीं है वरन प्रचलित बुराइयों को भला काम समझ उसको जारी रखने के लिए टट्टी की आड़ में शिकार है। ब्राह्मणों के लिए छोटे बड़े सबों को अपने चंगुल में रखने का सहज लटका है।" (उपदेशों की अलग-अलग बानगी) ब्राह्मण परिवार में जन्म लेने के बावजूद हिंदू धर्म व्यवस्था में व्याप्त ब्राह्मणवाद पर बालकृष्ण भट्ट की इस तरह की टिप्पणियाँ उस वक्त कुछ लोगों को जरूर चुभती रही होंगी लेकिन भट्ट जी अपनी लेखकीय जिम्मेदारी बखूबी निभा रहे थे। हिंदू धर्म में अंधविश्वासों और गैर-बराबरियों को आश्रय देने के लिए भट्ट जी ने सीधे-सीधे ब्राह्मणों को जिम्मेदार ठहराया है, "हमारी हिंदू कौम की ऐसी ही ऐसी दो-चार बातों ने इस समय के धूर्त, लालची, धर्मपरायण ब्राह्मणों को अपना मतलब साधने का मौका दे दिया। परलोक का रास्ता देखने के बहाने मूर्ख अपढ़ गँवारों को जिस ढंग चाहा, ढुलका लिया और ऐसी-ऐसी बातें निकालीं कि अपने चंगुल से बाहर किसी को रक्खा ही नहीं।" (हमारे धर्म संबंधी खर्च) भारतेंदु और बालकृष्ण भट्ट की सामाजिक-राजनीतिक चेतना में यही फर्क है। भारतेंदु एकाध जगह औपनिवेशिक शासन पर सवाल उठाते हैं और शेष जगह अपनी 'राजभक्ति' बनाए रखते हैं। सामाजिक प्रश्नों पर भी

उनके भीतर ऐसी स्पष्टता नहीं है। बालकृष्ण भट्ट न केवल राजनीतिक प्रश्नों पर स्पष्टता से अपनी उपनिवेश-विरोधी राय रखते हैं बल्कि धर्म जैसे संवेदनशील मसले पर भी अपना आलोचनात्मक विवेक बनाए रखते हैं।

बालकृष्ण भट्ट समाजिक बदलाव के मसले पर धर्म तक ही सीमित नहीं रहते, जाति व्यवस्था तक भी आते हैं। जातिवाद आज भी भारतीय राष्ट्रीयता के निर्माण में एक बहुत बड़ी बाधा बनकर खड़ा है। भट्ट जी ने जातिवाद की गहरी जड़ों को एक सदी पहले ही पहचान लिया था। वे ठीक ही रेखांकित करते हैं कि "बौद्ध, मुसलमान, ईसाई राज्य इस मुल्क में एक छोर से दूसरे छोर तक फैले चालचलन रीत त्यौहार सबको उलट डाला पर यह जाति पिशाची अभी तक जैसी थी वैसी बनी हुई है।" (जातपांत) जाति व्यवस्था संबंधी प्रश्न पर विचार करते हुए बालकृष्ण भट्ट इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं, "जैसा बेहूदा तरीका बिरादरी का इस समय प्रचलित है उससे कभी आशा नहीं की जा सकती कि जाति पांति के सत्यानाश बिना हुए उन्नति की हजार-हजार चेष्टा करने पर भी हमारी या हमारे देश की कभी तरक्की होगी।" (जातपांत)

किसी भी विचारक के विजन का पता लगाने के लिए उसके स्त्री संबंधी विचारों को भी देखना चाहिए। जैसे जाति के सवाल पर बालकृष्ण भट्ट सजग हैं, स्त्री के प्रश्न पर और भी ज्यादा स्पष्ट और पैनी दृष्टि रखते हैं। 'हमारी ललनाओं की शोचनीय दशा' निबंध में वे इस बात पर जोर देते हैं कि अंग्रेजों के राज में भारतीय समाज में इतने परिवर्तन हो रहे हैं लेकिन स्त्रियों की दशा में कोई सुधार नहीं आ रहा। स्त्री और पुरुष में जन्माधारित भेद करने से भट्ट जी असहमत हैं। वे लिखते हैं, "क्या खाली स्त्री की जाति में जन्म पाने के भेद से बुद्धि बल में भी भेद आ जाता है? कदापि नहीं। आपने खुद ऊँचे दरजे की शिक्षा पाया है तब इस योग्य हुए कि दूसरों की न्यूनता समझें। तब फिर वही शिक्षा फैलाने का प्रयत्न आप उनमें भी क्यों नहीं करते।" (स्त्रियाँ और उनकी शिक्षा) ध्यान रहे, यह उस वक्त की टिप्पणी है जब हिंदी नारीवाद और सीमोन द बोउवा का दूर-दूर तक नाम भी नहीं था। भट्ट जी स्त्रियों के प्रति पिछड़े नजरिये के लिए धर्म और पंरपरा को जिम्मेदार ठहराते हैं, "हमारे यहाँ के ग्रंथकार और धर्मशास्त्र गढ़ने वालों की कुंठित बुद्धि में न जाने क्यों यही समाया हुआ था कि स्त्रियाँ केवल दोष की खान हैं गुण इनमें कुछ है ही नहीं। इसी से चुन-चुन उन्हें जहाँ तक ढूँढ़े मिला केवल दोष ही दोष इनके लिख गए और जहाँ तक इनके हक में बुराई और अत्याचार करते बना अपने भरसक न चूके। कानून में इनका सब तरह का हक मार दिया।" (स्त्रियाँ) नवजागरण के सभी अगुवा स्त्री शिक्षा की बात जरूर करते थे लेकिन वे स्त्रियों को सिर्फ इतना शिक्षा देने के पक्षधर थे कि वे बच्चों का लालन-पालन अच्छे से कर सके। जब स्त्री शिक्षा के नाम पर समाज सुधारक 'प्रेमसागर' तक पहुँचे थे, तब ही बालकृष्ण भट्ट स्त्रियों को नए ज्ञान-विज्ञान के विषयों तक की शिक्षा देने की वकालत कर रहे थे।

सामाजिक समस्याओं में भट्ट जी बाल-विवाह को एक प्रधान समस्या मानते थे। उन्होंने बाल-विवाह और इसके दुष्प्रभावों पर लगातार अपनी लेखनी चलाई। वे इसे जनसंख्या वृद्धि का कारण व राष्ट्र-निर्माण में बाधा मानते थे। वे लिखते हैं, "पुत्र जन्म में

लोग बड़ी खुशी मनाते हैं, शहनाई बजवाते हैं, फूले नहीं समाते, हमें पछतावा और दुख होता है कि जहाँ तीस करोड़ गीदड़ थे, वहाँ एक की गिनती और बढ़ी... हमारी इतनी अधिक बढ़ती जैसी बाल्य-विवाह की कृपा से हो रही है किस काम की! ...हमारे देश की जनसंख्या अवश्य घटनी चाहिए और उसके घटाने का सुगम उपाय केवल बाल्यविवाह का रुक जाना है।" (आत्मनिर्भरता) एकदम कबीर वाला अंदाज। सीधा प्रहार। 'जो घर फूँकै आपनो, चले हमारे साथ' वाला भाव। बालकृष्ण भट्ट की विशेषता है कि वे समाज की समस्याओं को आपस में जोड़कर पाठक को समझाते हैं जिससे पाठक कार्य-कारण संबंधों को ठीक से समझ सके।

बालकृष्ण भट्ट के निबंधों का एक अन्य अत्यंत महत्वपूर्ण पक्ष हिंदी में पहले पहल मनोवैज्ञानिक विषयों पर लिखना है। भट्ट जी के मनोविज्ञान संबंधी लेखन से निश्चिततौर पर रामचंद्र शुक्ल को जरूर लाभ हुआ होगा। कल्पना कीजिए आपको किसी व्यक्ति को 'कल्पना' को समझाना है, कैसे समझाएँगे? आइए, इसमें भट्ट जी की मदद लेते हैं, "पूर्व अनुभूत किसी घटना वा पदार्थ का कुछ अंश लै किसी नई बात का गढ़ लेना कल्पना है जैसा स्त्री और पक्षी इन दोनों के शरीर आदि का अनुभव कर स्त्रियों के सौंदर्य के साथ पक्षियों के पर लगाकर कवियों ने परी एक जाति विशेष की नई कल्पना कर ली है। जिसके सदृश व जिसकी स्वजातीय वस्तु का कभी अनुभव नहीं हुआ उसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती।" (मनोविज्ञान) बाद के दिनों में कल्पना संबंधी चिंतन चाहे जितना आगे बढ़ गया हो, यह आगाज तो दमदार है ही।

भट्ट जी का लक्ष्य हिंदीभाषी समाज को आधुनिक बनाना था। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्होंने ज्ञान-विज्ञान के विषयों, नवीन आविष्कारों पर भी लेखन किया। एक तरफ उन्होंने दुनिया भर के वैज्ञानिकों और विचारकों के व्यक्तित्व व योगदान से हिंदी पाठकों को परिचित कराया, दूसरी तरफ प्रकाश, विद्युत, भूगर्भ विज्ञान, वायुमंडल, न्यूटन के सिद्धांत आदि पर लेखन कर यह साबित कर दिया कि हिंदी के लेखक और पाठक ज्ञान-विज्ञान के मामले में किसी से पीछे नहीं रहेंगे। 'हिंदी प्रदीप' में इस तरह के विषयों पर मौलिक और अनूदित लेख छपा करते थे। समाज की हर गतिविधि को कार्य-कारण की दृष्टि से समझना, समाझाना और ज्ञान-विज्ञान के विषयों पर अनवरत लेखन जैसी विशेषताएं ही भट्ट जी को हिंदी का पहला आधुनिक लेखक बनाती हैं।

बालकृष्ण भट्ट से हिंदी आलोचना की शुरुआत भी मानी जाती है। उनके लेखों में सैद्धांतिक आलोचना के तत्व तो मिलते ही हैं, साथ ही उन्होंने उस समय प्रकाशित हो रही रचनाओं पर आलोचनात्मक टिप्पणियाँ लिखकर व्यावहारिक आलोचना का मार्ग भी प्रशस्त किया। भट्ट जी के आलोचनकर्म का मूल्यांकन करते हुए अभिषेक रौशन का निष्कर्ष दृष्टव्य है, "बालकृष्ण भट्ट आलोचना के अर्थ और अवधारणा, दोनों स्तरों पर काम करते हैं... कहीं भी साहित्य की सामाजिक पक्षधरता उनकी नजरों से ओझल नहीं होती है। साहित्यलोक और मनुष्यलोक में एकता स्थापन बालकृष्ण भट्ट के आलोचना-कर्म का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है।"[xviii] लाला श्रीनिवासदास के 'संयोगिता स्वयंवर' नाटक की भट्ट जी द्वारा लिखित 'सच्ची समालोचना' (1886) का हिंदी आलोचना की परंपरा में ऐतिहासिक

महत्व है। वे लिखते हैं, "ऐतिहासिक नाटक किसको कहेंगे? क्या केवल किसी पुराने समय के ऐतिहासिक पुरावृत्त की छाया लेकर नाटक लिख डालने से ही वह ऐतिहासिक हो गया? क्या किसी विख्यात राजा या रानी के आने से ही वह लेख ऐतिहासिक हो जाएगा? यदि ऐसा है तो गप्प हाँकने वाले दस्तानगो और नाटक के ढंग में कुछ भी भेद न रहा। किसी समय के लोगों के हृदय की क्या दशा थी उसके आभ्यंतरिक भाव किस पहलू पर ढुलके हुए थे अर्थात उस समय मात्र के भाव Spirit of the times क्या थे? इन सब बातों का ऐतिहासिक रीति पर पहले समझ लीजिए तब उसके दरसाने का यत्न नाटकों द्वारा कीजिए।" (सच्ची समालोचना)। इसी तरह भट्ट जी ने 'सच्ची कविता', 'उपन्यास' आदि पर भी लिखा है।

बालकृष्ण भट्ट की भाषा और कहने के तरीके में शुष्कता का आरोप लगाया जाता है। भारतेंदु और प्रतापनारायण मिश्र की तुलना में भट्ट जी की भाषा कम जीवंत है लेकिन जैसे-जैसे हम भट्ट-साहित्य में गोता लगाएँगे, पाएँगे कि उन पर शुष्कता का आरोप निराधार है। भट्ट जी की भाषा के बारे में ब्रजमोहन व्यास के इस निष्कर्ष से सहमत हुआ जा सकता है, "भट्टजी भाषा की व्यंजना शक्ति के प्रति सतर्क थे। अपने युग की मुक्त प्रकृति के अनुकूल भट्टजी ने कहावतों और मुहावरों के व्यापक प्रयोग से अपनी शैली की वक्रता और व्यंग्य को निखारा है... उनकी भाषा अस्थिर, देशज और पंडिताऊ प्रयोगों से युक्त अपरिपक्व और अनिश्चित है... इन सब कमियों के बावजूद उनकी भाषा प्रवाहपूर्ण, विषय तथा प्रसंग के अनुकूल, मनोरंजक और आकर्षक है।"[xix] स्वयं भाषा के बारे में भट्ट जी के विचार जनोन्मुखी रहे हैं। कुछ लोग वेदों के बाद भाषा का लगातार पतन देखते हैं जबकि भट्ट जी ऐतिहासिक भाषा विज्ञान के भाषाओं में परिवर्तन के सिद्धांत को स्वीकारते हैं। उस वक्त हिंदी भाषा में जटिलता आने का कारण उर्दू-विरोध था, भट्ट जी अपने निबंध 'ग्रामीण भाषा' में इस तथ्य को स्वीकारते हैं। साथ ही वे मानते हैं कि 'भाषाओं को बचाने की जिम्मेदारी समाज के साथ उसके लेखकों की भी है।' (भाषाओं का परिवर्तन)

भट्ट जी की भाषा और उनके विचारों के आधार पर वे कबीर की परंपरा के लेखक प्रतीत होते हैं। जैसे कबीर ने एक समतामूलक समाज का सपना देखा, वैसे ही बालकृष्ण भट्ट भारतीय समाज की भीतरी समस्याओं और बाहरी साम्राज्यावादी शासन के खिलाफ आवाम को जगाने और एकजुट करने का संकल्प लेते हैं। यह संकल्प उनकी लेखनी में कूट-कूटकर भरा है। नवजागरण के इस बड़े विचारक और हिंदी के पहले आधुनिक लेखक के सही मूल्यांकन की आवश्यकता है। इसके लिए सबसे उपयुक्त रास्ता उनकी रचनाओं से होकर ही जाता है।

संदर्भ सूची

[i] हिंदी साहित्य का इतिहास, रामचंद्र शुक्ल, पृष्ठ-315

[ii] भारतेंदु युग और हिंदी भाषा की विकास परंपरा, पृष्ठ 87-92

[iii] भट्ट-निबंधावली (दो भाग), हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 1994

[iv] भट्ट निबंधमाला (दो भाग), नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, विक्रम सं. 2030

[v] बालकृष्ण भट्ट : प्रतिनिधि संकलन, नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली, 1996

[vi] बालकृष्ण भट्ट के श्रेष्ठ निबंध, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1997

[vii] भट्ट नाटकावली, संपादक - धनंजय भट्ट, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी

[viii] बालकृष्ण भट्ट, उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, लखनऊ, 2012

[ix] बालकृष्ण भट्ट रचनावली (चार भाग), संपादक - समीर कुमार पाठक, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा.) लिमिटेड, नई दिल्ली, 2015

[x] बालकृष्ण भट्ट की जीवनी - लक्ष्मीकांत भट्ट, चतुर्वेदी प्रकाशन समिति, आगरा, 1973

[xi] बालकृष्ण भट्ट - ब्रजमोहन व्यास, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1983

[xii] निबंधकार बालकृष्ण भट्ट - गोपाल पुरोहित, सं - डॉ. भागीरथ मिश्र, हिंदी साहित्य समाज, लखनऊ विश्वविद्यालय

[xiii] बालकृष्ण भट्ट और आधुनिक हिंदी आलोचना का आरंभ - अभिषेक रौशन, अंतिका प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009

[xiv] भारतेंदु युग और हिंदी भाषा की विकास परंपरा, पृष्ठ - 87

[xv] बालकृष्ण भट्ट : प्रतिनिधि संकलन, पृष्ठ - 15

[xvi] वही, भूमिका से।

[xvii] हिंदी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ- 305

[xviii] बालकृष्ण भट्ट और आधुनिक हिंदी आलोचना का आरंभ, पृष्ठ - 181-82

[xix] बालकृष्ण भट्ट के श्रेष्ठ निबंध, भूमिका में उद्धरित।